RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18, अंक-3, जून जुलाई अगस्त 2025

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रास्रो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18 अंक - 3 जून-जुलाई-अगस्त-2025

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

पद्मावत में प्रेमतत्व का ऐतिहासिक संदर्भ में विवेचन

नरेन्द्र सिंह नाथावत
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

मलिक मुहम्मद जायसी की कृति 'पद्मावत' सूफ़ी प्रेम-दर्शन की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें प्रेम को केवल सांसारिक आकर्षण नहीं, बल्कि आत्मा और परम सत्ता के मिलन का माध्यम माना गया है। सूफ़ी साधना में प्रेम ही वह मूल तत्त्व है जिसके सहारे साधक ईश्वर तक पहुँचता है। इसी सूफ़ी परंपरा का प्रभाव 'पद्मावत' में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ प्रेम साधना, त्याग, पीड़ा और आत्म-विलय के मार्ग से होकर पूर्णता को प्राप्त करता है।

सूफी साधकों के अनुसार प्रेम ऐसा अनुभव है जो साधक को संसारिक बंधनों से मुक्त कर देता है। जब मनुष्य खुदा के प्रेम में तल्लीन हो जाता है, तब उसके लिए संसार की अन्य सभी वस्तुएँ गौण हो जाती हैं। प्रसिद्ध सूफ़ी साधिका राबिया बसरी का यह कथन कि खुदा के प्रेम में डूब जाने के बाद न किसी से प्रेम शेष रहता है और न घृणा, इसी आध्यात्मिक प्रेम की चरम अवस्था को प्रकट करता है। 'पद्मावत' में भी यही प्रेम-भाव पद्मावती के सौंदर्य-वर्णन और रत्नसेन की प्रेम-यात्रा के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त हुआ है। यहाँ पद्मावती केवल एक स्त्री नहीं, बल्कि परम सत्य या ईश्वरीय सौंदर्य का प्रतीक बन जाती है, जिसकी प्राप्ति के लिए साधक को कठोर तप और कष्टों से गुजरना पड़ता है।

सूफी प्रेम-दर्शन में प्रेम की पहली अवस्था उत्कट अभिलाषा है। यह अभिलाषा साधक के हृदय में ऐसी तीव्र आकांक्षा उत्पन्न करती है कि उसके बिना जीवन अर्थहीन प्रतीत होने लगता है। जब वांछित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती, तब साधक बेचैनी, पीड़ा और विरह की अग्नि में जलता है। यही विरह और वेदना प्रेम की कसौटी है। 'पद्मावत' में रत्नसेन का पद्मावती के लिए तड़पना, मार्ग की कठिनाइयों को सहना और अंततः अपने सर्वस्व का त्याग कर देना, सूफ़ी प्रेम की इसी विरहात्मक साधना को प्रकट करता है। जैसे सांसारिक प्रेम में प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए व्याकुल रहता है, वैसे ही सूफ़ी साधक ईश्वर के लिए तड़पता है।

यह पीड़ा और जलन व्यर्थ नहीं होती। सूफ़ी मत में माना जाता है कि इसी अग्नि में तपकर साधक शुद्ध होता है और अंततः अपने प्रिय से एकाकार हो जाता है। जब वह अपने प्रिय को पा लेता है, तब उसका व्यक्तिगत अस्तित्व समाप्त-सा हो जाता है। यह अवस्था 'फना' कहलाती है, जिसमें साधक अपने अहं को त्यागकर परम सत्ता में विलीन हो जाता है। 'पद्मावत' में रत्नसेन का बलिदान और पद्मावती का जौहर इसी आत्म-विलय और त्याग का प्रतीक है, जहाँ प्रेम अपने चरम पर पहुँचकर जीवन से भी ऊपर उठ जाता है।

मंसूर अल-हल्लाज का यह कथन कि इश्क़ की शुरुआत जलाने वाली आग है और उसका अंतिम

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

परिणाम मौत है, सूफ़ी प्रेम-दर्शन के गूढ़ सत्य को उद्घाटित करता है। यहाँ 'मौत' से तात्पर्य शारीरिक मृत्यु नहीं, बल्कि अहंकार और सीमित अस्तित्व की मृत्यु है। 'पद्मावत' का प्रेम भी इसी अर्थ में मृत्यु-साध्य प्रेम है, जहाँ प्रेमी अपने अस्तित्व का विसर्जन कर देता है। इस प्रकार 'पद्मावत' में प्रेम केवल कथा का विषय नहीं रह जाता, बल्कि सूफ़ी साधना का रूप लेकर आत्मा को परम सत्य से जोड़ने वाला माध्यम बन जाता है।

जायसी मूलत: प्रेम-मार्ग के साधक हैं और उनका संपूर्ण काव्य-संसार इसी प्रेम-साधना से आलोकित है। वे स्वयं को किसी स्वतंत्र साधक के रूप में नहीं, बल्कि अपने पीर की कृपा से प्राप्त प्रेम-प्रसाद का अधिकारी मानते हैं। सैयद अशरफ़ जहाँगीर का स्मरण करते हुए जब वे कहते हैं कि उनके हृदय में प्रेम भर दिया गया और उसी से अंत:करण निर्मल हुआ, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी के लिए प्रेम कोई बौद्धिक अवधारणा नहीं, बल्कि गुरु-कृपा से प्राप्त आध्यात्मिक अनुभव है। पीर द्वारा जो प्रेम की अग्नि प्रज्वलित की गई, उसे अपने अनुभव, विरह और साधना से प्रखर करना शिष्य का कार्य है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए जायसी कहते हैं कि गुरु तो केवल विरह की चिनगारी देता है, उसे सुलगाकर ज्वाला बना देना चेला का दायित्व है। जायसी ने इस चिनगारी को पूरी तरह प्रज्वलित किया और अपने काव्य में उसे विराट रूप दिया।

अपने मुर्शिद शेख बुरहान से भी उन्हें प्रेम का ही मधु प्राप्त हुआ था। 'चित्ररेखा' में शेख बुरहान को वे उस पथ-प्रदर्शक के रूप में स्मरण करते हैं, जिसने स्वयं प्रेम-पियाले का आस्वादन कर शिष्य को भी उसकी एक बूँद चखाई। जिसने प्रेम-पियाला पी लिया, उसका चित्त प्रेम में बँध जाता है और वही सच्चा मार्ग है, जिसमें झूठे सांसारिक धंधों का त्याग कर दिया जाता है। यही कारण है कि जायसी ने प्रेम को केवल आरंभिक साधना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे अंतिम अवस्था तक पहुँचाया। उनके लिए प्रेम-पान एक निरंतर प्रक्रिया है, जिसमें पियाला हाथ में है, सुराही साथ है और प्रेम का निर्वाह पूरी निष्ठा से किया जाता है।

'पद्मावत' के उपसंहार में जायसी स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह काव्य-रचना उन्होंने अपने रक्त की लेई से जोड़ी है और अपने आँसुओं के जल से उसे भिगोया है। जो भी इसे सुनता है, वह प्रेम की पीड़ा का अनुभव करने लगता है। इससे स्पष्ट होता है कि 'प्रेम की पीर' ही जायसी का केंद्रीय प्रतिपाद्य विषय है। 'पद्मावत' की कथा आदि से अंत तक प्रेम की उत्कंठा, व्याकुलता, विरह और मिलन की विभिन्न अवस्थाओं का कलात्मक चित्रण है। जहाँ-जहाँ रूप अपने सौंदर्य का विस्तार करता है, वहीं परम सत्ता की झलक मिलने लगती है और जहाँ एकनिष्ठ प्रेम की तीव्रता दिखाई देती है, वहीं विरहिणी आत्मा की परमात्मा से मिलने की व्याकुलता स्पष्ट हो जाती है।

फ़ारसी सूफ़ी परंपरा में प्राय: नायिका को परमात्मा और नायक को आत्मा का प्रतीक माना गया है, किंतु हिंदी सूफ़ी काव्य में यह प्रतीकात्मकता अधिक लचीली है। यहाँ जो भी अपने प्रिय की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है, वही आत्मा के रूप में और दूसरा परमात्मा के रूप में दिखाई देता है। 'चन्दायन' में आरंभ में नायिका चाँद लोरिक को देखकर मुग्ध होती है और उसे बुलाने का प्रयास करती है, जहाँ वह आत्मा के रूप में प्रयत्नशील लगती है। आगे चलकर जब लोरिक कठिन मार्गों से होकर उसके धवलगृह की ओर बढ़ता है, तब वही आत्मा की परमात्मा से मिलने की साधना का प्रतीक बन जाता है। 'पद्मावत' में भी

अधिकांश प्रयत्न रत्नसेन की ओर से होते हैं, किंतु जब हीरामन सुआ पद्मावती को रत्नसेन के आगमन का समाचार देता है, तब उसकी व्याकुलता भी उसी प्रकार की हो जाती है जैसी आत्मा की परमात्मा से मिलने की तड़प। रत्नसेन के बंदी हो जाने पर पद्मावती की विरह-दशा अत्यंत मार्मिक हो उठती है। उसका मौन, पीड़ा और अचेत अवस्था प्रेम की उस पराकाष्ठा को व्यक्त करती है, जहाँ शब्द भी साथ छोड़ देते हैं।

जायसी के अनुसार प्रेम का मार्ग अत्यंत कठिन है। इस पथ पर चलने वाले को हृदय में निरंतर 'प्रेम की पीर' सँजोकर रखनी पड़ती है। प्रेम-वल्लरी को आँसुओं के जल से सींचना और संबंधों को अपने रक्त की लेई से जोड़ना पड़ता है। सुआ जब रत्नसेन को पद्मावती के परम रूप का वर्णन करता है, तब साथ ही प्रेम-मार्ग की कठिनाइयों से भी अवगत कराता है। वह बताता है कि प्रेम का नाम तो मीठा है, पर वह दु:ख ही देता है। प्रारंभ में प्रेम सुख देता है, किंतु आगे चलकर उसका निर्वाह अत्यंत कठिन हो जाता है। प्रेम आकाश से भी ऊँचा और ध्रुव से भी ऊर्ध्व है; उसे वही छू सकता है जो सिर देकर पाँव दे सके, अर्थात जो अपने अहं और सांसारिक सुखों का त्याग कर सके।

प्रेमी को प्रेम-भोग की आकांक्षा होती है, पर यह भोग सहज नहीं है। इसके लिए योग-साधना करनी पड़ती है। सुआ स्पष्ट करता है कि यदि भोग सहज होता, तो कोई योग क्यों करता। राजा होकर भोग की कामना और साथ ही योग की सिद्धि—दोनों का एक साथ निर्वाह संभव नहीं। इसके लिए कठोर साधना, तप और सिर पर संकट उठाने की तैयारी आवश्यक है। प्रेम-पर्वत कठिन और दुर्गम है, उस पर वही चढ़ सकता है जो सिर के बल चढ़े। इस मार्ग पर काम, क्रोध, तृष्णा, मद और माया जैसे पाँच चोर निरंतर बाधा डालते हैं और अंत:करण के भीतर अनेक गुप्त मार्ग खुले रहते हैं, जिनसे साधना विचलित हो सकती है।

जायसी ने नाथपंथी योगियों की साधना और प्रतीकों को अपने काव्य में ग्रहण अवश्य किया, किंतु वे स्वयं योगमार्ग के साधक नहीं थे। यह मानना भ्रांति है कि वे नाथयोगी परंपरा के अनुयायी थे। उनके लिए योग प्रेम-मार्ग का एक पड़ाव मात्र है। उनका योग कायाशुद्धि, इंद्रिय-निग्रह और वासनात्मक संसार से विरक्ति तक सीमित है। योगियों की गुह्य और रहस्यमयी साधनाओं से उनका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। सूफ़ी काव्य के प्रारंभिक काल में उत्तर भारत में योगमार्ग का व्यापक प्रभाव था, इसलिए सूफ़ियों ने उसके प्रतीकों और साधना-सोपानों को कुशलता से अपने काव्य में समाहित किया। किंतु ये सब उनके लिए साधन हैं, साध्य नहीं। जायसी के काव्य में साध्य केवल प्रेम है—वही प्रेम, जो पीर की कृपा से हृदय में जागता है, विरह की आग में तपता है और अंतत: आत्मा को परम सत्ता से एकाकार कर देता है।

सूफ़ी परंपरा में योगी वह है जो अपने अन्त:करण में विरह की आग जलाए हुए चलता है। यह विरह कोई साधारण वियोग नहीं, बल्कि प्रेम का प्राणतत्त्व है। सूफ़ी साधकों के लिए प्रेम की सच्ची पहचान मिलन में नहीं, बल्कि विरह की तीव्र वेदना में होती है। कुछ सूफ़ी तो विरह को ही वास्तविक प्रेम मानते हैं, क्योंकि विरह ही वह अवस्था है जिसमें साधक का मन संसार से पूर्णत: उचट जाता है। विरही को संसार की कोई वस्तु आकर्षित नहीं करती; उसका चित्त निरंतर प्रिय में ही रमा रहता है। मंसूर अल-हल्लाज का यह कथन अत्यंत सार्थक है कि मिलन तभी संभव होता है जब साधक कष्टों और पीड़ाओं के बीच से होकर गुज़रता है। परंतु सूफ़ी दृष्टि में यह प्रश्न गौण हो जाता है कि मिलन होगा भी या नहीं, क्योंकि विरह की पीड़ा स्वयं में इतनी गहन और व्यापक होती है कि वह किसी भी मिलन से कम नहीं लगती। जहाँ हर कण में प्रिय का ही जलवा दिखाई देता हो, वहाँ मिलने और बिछुड़ने का भेद भी मिट जाता है। यही कारण है कि कहा

गया है कि वास्तविक परदा यह नहीं कि प्रिय दिखाई नहीं देता, बल्कि यह है कि सर्वत्र उसका प्रकाश होने पर भी उसकी सूरत पहचानी नहीं जाती।

सूफ़ी चिंतक अल-हुज्वेरी का मत है कि प्रिय के लिए व्याकुल हो जाना ही प्रेम है। प्रेम कोई शांत या संतुलित अवस्था नहीं, बल्कि भीतर तक हिला देने वाली बेचैनी है। जायसी भी इसी सूफ़ी मत के समर्थक हैं। उनके अनुसार विरह की व्याकुलता ही प्रेम का मूल कारण है। जब तक तन और हृदय में विरह नहीं जागता, तब तक प्रेम का अंकुर नहीं फूटता और न ही तप, कर्म, धर्म, सत्य और नियम साध्य बन पाते हैं। अर्थात प्रेम-साधना का प्रारंभ ही विरह से होता है और वही आगे की समस्त साधना का आधार बनता है।

'पद्मावत' में रत्नसेन जब पद्मावती के प्रेम में योगी बनता है, तो उसकी दशा पूर्णत: विरह से अभिभूत साधक की हो जाती है। उसके लिए वन अंधकारमय हो जाता है, रात और भी गहरी प्रतीत होती है और भादों का विरह असह्य बन जाता है। हाथ में किंगरी लेकर वह वैरागी बन जाता है और उसके पंचतंत्रों से निकलने वाला स्वर मानो उसके हृदय की तड़प को स्वर दे देता है। उसकी आँखें उसी मार्ग पर लगी रहती हैं जिस पर पद्मावती का दीप जलता है। उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे चातक केवल वर्षा की बूंद की प्रतीक्षा में आकाश की ओर टकटकी लगाए रहता है या सीप स्वाति-नक्षत्र की बूँद के लिए खुली रहती है। यहाँ रत्नसेन की प्रतीक्षा आत्मा की उस प्रतीक्षा का रूप ले लेती है, जो परमात्मा के दर्शन के लिए व्याकुल है।

राजा रत्नसेन अब राजा नहीं रह जाता; वह वियोगी योगी बन जाता है। शरीर की सुध-बुध उसे नहीं रहती, मन बावला होकर केवल प्रेम में ही रमता है। प्रेम की उलझन इतनी गहरी हो जाती है कि उसे अपने बालों की भी सुध नहीं रहती और सिर पर जटाएँ स्वयं ही उलझ जाती हैं। उसकी शारीरिक दशा दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। जहाँ प्रेम बस गया हो, वहाँ मांस कहाँ से बचे, शरीर में न रक्त शेष रहता है और न आँखों में आँसू। यह देह-क्षय वास्तव में उस आंतरिक साधना का बाह्य रूप है, जिसमें साधक का समस्त अस्तित्व प्रेम में गलने लगता है।

इस प्रकार रत्नसेन योग-मार्ग का पथिक बनता है, किंतु यह योग अपने आप में साध्य नहीं है। सिंहल-दुर्ग की विजय जिस प्रकार बाह्य रूप से एक कठिन कार्य है, उसी प्रकार शरीर रूपी दुर्ग पर विजय प्राप्त करना आंतरिक साधना का प्रतीक है। जायसी के अनुसार इस शरीर-दुर्ग की विजय का उद्देश्य केवल तप या साधना नहीं, बल्कि पद्मावती—अर्थात परम प्रेम—की प्राप्ति है। यदि शरीर-साधना ही अंतिम लक्ष्य बन जाए, तो वह व्यर्थ है। जायसी स्पष्ट कहते हैं कि यदि प्रेम न हो, तो ऐसी साधना मुट्ठी भर धूल के समान है। मनुष्य प्रेम से ही वैकुंठ का अधिकारी बनता है; अन्यथा सब साधन निष्फल हैं।

हाँ, शरीर का नियंत्रण, इन्द्रियों का शोधन, संयम और नियमन—इन सबको जायसी स्वीकार करते हैं, किंतु केवल साधन के रूप में। इनका उद्देश्य है परम प्रेम की प्राप्ति। यह साधना भी तभी तक सार्थक है, जब तक साधक के हृदय में अल्लाह के प्रेम की दीनता और विनय जागृत न हो जाए। जब प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, तब दीवाने को न दीन की चिंता रहती है, न दुनिया की। वह तो निरंतर प्रेम के प्याले पर प्याला चढ़ाता रहता है और उसी प्रेम में रमकर अपने अस्तित्व को भूल जाता है। यही जायसी का प्रेम-दर्शन है, जहाँ योग, तप और साधना सब कुछ प्रेम के अधीन हैं और प्रेम ही अंतिम सत्य बनकर सामने आता है।

जायसी पर योग-मार्ग का प्रभाव मानने वाले यह भूल जाते हैं कि वे योग-मार्ग के अनुयायी नहीं थे, बल्कि उन्होंने योग को अपनी प्रेम-साधना में एक सहायक साधन के रूप में अत्यंत कुशलता से आत्मसात कर लिया था। जायसी के लिए योग कोई अंतिम लक्ष्य नहीं, बल्कि प्रेम की अंतिम मंज़िल तक पहुँचने का एक पड़ाव मात्र है। उन्होंने इस तथ्य को 'पद्मावत' में अत्यंत रोचक और प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। जब रत्नसेन सिंहलगढ़ को घेर लेता है, तब गंधर्वसेन के दूत उसे समझाते हैं कि योगी के लिए योग के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं होता। उनका व्यंग्य यह है कि साधना के अन्य मार्गों में साध अर्थात इच्छा की पूर्ति हो सकती है, किंतु योग में तो केवल अपने शरीर और अस्तित्व को दग्ध करना पड़ता है, वहाँ कुछ प्राप्त नहीं होता। वे रत्नसेन की पद्मावती-प्राप्ति की आकांक्षा पर तीखा कटाक्ष करते हुए कहते हैं कि वह तो राजकुमारी है और तू योगी है—योगी का भाग्य तो जंगल में भटकना और कष्ट सहना है, जबकि राजकुमारी का स्थान राजमहल है। इस व्यंग्य के माध्यम से जायसी यह स्पष्ट करते हैं कि यदि योग अपने आप में साध्य बन जाए, तो वह प्रेम-मार्ग के विपरीत पड़ जाता है।

जायसी से पूर्व 'चंदायन' और 'मृगावती' जैसे काव्यों में भी प्रेम के लिए 'जीव गँवाने' अर्थात अपने अहं और सांसारिक अस्तित्व को त्यागने का आदर्श मिलता है, परंतु इस अवस्था को व्यवस्थित रूप देकर उसका नामकरण 'मरजीआ दशा' सबसे पहले जायसी ने ही किया। 'मरजीआ' का अर्थ है—मर कर जीना, अर्थात अपने पुराने, भौतिक और अहंकारपूर्ण अस्तित्व को समाप्त कर प्रेम के नए जीवन में प्रवेश करना। कुतुबन ने इस भाव को संकेत रूप में व्यक्त किया था कि जो जल-जलकर मरता है, वही वास्तव में मर-मरकर जीता है और वही प्रेम-सुरा का रस पी पाता है। जायसी ने इसी भाव को विस्तार और गहराई दी। उनके अनुसार गुरु ही प्रेम का पंथ दिखाता है। गुरु-कृपा से साधक भौतिक एषणाओं से बने पुराने शरीर का त्याग करता है और एक नए, शुद्ध शरीर का अवतार धारण करता है। यही मरजीआ होना है। इस अवस्था में पहुँचकर ही साधक प्रेम-मधु का पान कर सकता है और कमल-भँवर के मिलन की तरह रसासिक्त हो सकता है।

जायसी यह भी दिखाते हैं कि इस मार्ग में साधक की बार-बार परीक्षा होती है कि वह सचमुच मरजीआ हुआ है या नहीं। सिंहलगढ़ में प्रवेश से पूर्व महादेव स्वयं रत्नसेन से कहते हैं कि वह मरजीआ होकर ही आगे बढ़े। जब रत्नसेन सिंहलगढ़ पहुँच जाता है और हीरामन पद्मावती को उसके आगमन का समाचार देता है, तब पद्मावती कहती है कि वह चाहे तो उसी क्षण उससे मिल सकती है, किंतु वह अभी प्रेम के रंग में पक्का नहीं हुआ है और न ही उसने मरजीआ की अवस्था प्राप्त की है। वह स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करती है कि रत्नसेन अभी कच्चा है, न प्रेम के रंग में स्थिर हुआ है और न ही उसने 'जीते-जी मरने' का रहस्य समझा है। इसलिए वह पत्र लिखकर उसे चुनौती देती है कि वही सूरमा है जो प्राण देकर आकाश पर चढ़ सके, अर्थात जो पूर्ण आत्मोत्सर्ग के लिए तैयार हो। यहाँ जायसी प्रेम को वीरता और तपस्या से जोड़ देते हैं और बताते हैं कि प्रेम का मार्ग केवल भावुकता का नहीं, बल्कि पूर्ण आत्मबलिदान का मार्ग है।

सूफ़ी प्रेम-साधना की चरम परिणति मिलन में मानी जाती है। यह मिलन साधारण भौतिक मिलन नहीं, बल्कि अपने प्रियतम से एकरूप होकर अभेद संबंध स्थापित कर लेना है। इस अंतिम अवस्था को व्यक्त करने के लिए सूफ़ी कवियों ने सिद्ध योगियों के प्रतीकों का सहारा लिया है। नायक-नायिका का मिलन सूर्य-चंद्र के मिलन के रूप में वर्णित किया गया है, जो शिव-शक्ति, प्रज्ञा-उपाय और आत्मा-परमात्मा के संयोग का प्रतीक है। सिद्ध-योगियों ने भी इस आंतरिक मिलन की अवस्था को पुरुष-स्त्री के

युगनद्ध संभोग के प्रतीक द्वारा व्यक्त किया है और प्रतीकात्मक रूप से उसके मांसल चित्र भी प्रस्तुत किए हैं। इस परंपरा का प्रभाव हिंदी के सूफ़ी कवियों, विशेषत: जायसी पर, स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

प्रेमी-प्रेमिका या पुरुष-स्त्री का यह मिलन वस्तुत: एकात्म मिलन है। यह पार्थिव मिलन अमूर्त, आध्यात्मिक मिलन की सीढ़ी है। संत दृष्टि में किसी भी मानवीय क्रिया—चाहे वह रति हो या संभोग—से संकोच नहीं होता। यदि पार्थिव मिलन को भी अमूर्त अर्थ दे दिया जाए, तो फिर उसमें और आत्मा-परमात्मा के मिलन में कोई भेद नहीं रह जाता। संभवत: इसी कारण जायसी जैसे कवियों ने प्रेम के मांसल और सजीव चित्र प्रस्तुत करने की आवश्यकता समझी, ताकि सांसारिक अनुभूति के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य को प्रकट किया जा सके।

'पद्मावत' में आरंभ से अंत तक प्रेम का तंतु फैला हुआ है। इसमें विरह की तान बहुत लंबी और गहरी है, जबकि मिलन का क्षण अपेक्षाकृत लघु है। विरह और मिलन के धागों से बुना हुआ यह प्रबंध-काव्य जायसी के प्रेम-दर्शन का अनुपम उदाहरण है। मिलने से पहले भी विरह है और मिलने के बाद भी विरह। रत्नसेन के युद्ध में मारे जाने पर पद्मावती फिर से विरहिणी हो जाती है। चिता पर चढ़ने से पूर्व उसका कथन दीपक-पतंग के प्रेम का प्रतीक बन जाता है, जिसमें जीवन भर जलना ही प्रेम का धर्म है और उसी जलने में प्रेम का वास्तविक आनंद निहित है। जायसी स्वयं इस प्रेम-आनंद को पा चुके थे। तभी उन्होंने नयनों के गाढ़े प्रेम-जल से सींचकर यह कथा रची और दृढ़ विश्वास के साथ कहा कि जिसने इसे सुना, उसने प्रेम की पीर को अवश्य पा लिया।

ꕥꕥꕥ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत, संपादक—डॉ. रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2009 (1952)*
2. *मलिक मुहम्मद जायसी, चित्ररेखा, संपादक—डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1956*
3. *अल-हुज्वेरी, कश्फ़-उल-महजूब (हिंदी अनुवाद), अनुवादक—डॉ. सैयद अब्दुल वहाब, इदारा-ए-अदबियात, दिल्ली, 1968*
4. *मंसूर अल-हल्लाज, दीवान-ए-हल्लाज (हिंदी संदर्भ संस्करण), संपादक—आर. ए. निकोल्सन, लुजैक एंड कंपनी, लंदन, 1913*
5. *कुतुबन, मृगावती, संपादक—डॉ. माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1958*
6. *दाऊद, चन्दायन, संपादक—डॉ. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1954*
7. *डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960*
8. *डॉ. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1961*
9. *डॉ. श्यामसुंदर दास, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1949*
10. *मार्गरेट स्मिथ, अल-गजाली : द मिस्टिक, लूजैक एण्ड कम्पनी, लंदन, 1944*
11. *मलिक मुहम्मद जायसी, जायसी ग्रंथावली, संपादक—डॉ. रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1941*